IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 28, Issue 7, Series 1 (July. 2023) 69-74
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

पूर्णिया जिले की आर्थिक पृष्ठभूमि : एक अध्ययन

प्रभात कुमार सिंह
‘ शोध छात्र, इतिहास विभाग, पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ, बिहार

~

सार,

हम जानते हैं कि वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए एक पूँजी–ढ़ाँचे की आवश्यकता होती है। जब हम किसी एक देश के पूँजी–ढ़ाँचे की चर्चा करते हैं तो हम उसमें साधारणतया कल–कारखानों, यंत्र औजार और उन सब उपकरणों को शामिल करते हैं, जिनकी वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्कता होती है। किन्तु यहाँ एक महत्वपूर्ण बात को नजर अंदाज कर देते हैं, कि क्या कोई भी पूँजी–ढ़ाँचा अपने आप उत्पादन का काम कर सकता है? क्या उसे कुछ सेवाओं की आवश्यकता नहीं होती है? जैसे कच्चे माल को कारखाने तक लाने और तैयार माल को बाजार तक ले जाने के लिए परिवहन सेवाओं, समाचारों के आदान–प्रदान के लिए संचार सेवाओं, श्रमिकों के शिक्षण–प्रशिक्षण के लिए शिक्षा सुविधाओं आदि। वस्तुओं की उत्पादन तथा वितरण के लिए जिस प्रकार कारखानों, संयंत्रों, मशीनों, यंत्रों व औजारों आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार परिवहन, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, जैसी कुछ सेवाओं की भी आवश्यकता होती है। इस प्रकार उत्पादक सेवाओं की उत्पादन करने के लिए जिस प्रकार के ढ़ाँचे की आवश्यकता होती है, ऐसे ढ़ाँचे को ही आधारित संरचना कहा जाता है। इस प्रकार, आधारित संरचना से हमारा आशय अर्थव्यवस्था में सेवाएँ प्रदान के लिए बनाए गए ढ़ाँचे से होता है।

विस्तार

आधारित संरचना की सुविधाएँ वास्तव में तो एक अर्थव्यवस्था के लिए आधारभूत सेवा सुविधाएँ ही होती है। आधारित संरचनाओं की यह विशेषता होती है कि ये वस्तुओं का प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन नहीं करती, बल्कि ये अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्रियाओं को प्रोत्साहित करती है। आधारित संरचनाओं के उदाहरण हैं– रेलवे, सड़के, बाँध, नहरें, बिजली संयंत्र, दूर संचार, जल आपूर्ति, सफाई तथा मल व्ययन, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, अस्पताल, डिस्पेंसरीज, आदि।[1]

पूर्णियाँ जिला में रेलवे, सड़के, बाँध, नहरें, बिजली, संयत्र, दूर संचार, जल आपूर्ति, सफाई तथा मल व्ययन, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, डिस्पेंशरी, आदि मौजूद है। लेकिन पूर्ण विकसित नहीं है, यही कारण है कि यहाँ आज भी कृषि पिछड़ी अवस्था में है। वर्तमान सरकार ने इस ओर काफी ध्यान दिया है।

कृषि आधारित उद्योगों की संरचना से अर्थ कृषि आधारित उद्योगों के ढ़ांचे या स्वरूप से लगाया जाता है, जो एक देश एक राज्य में एक समय विद्यमान है। यह स्वरूप या ढ़ाचा स्थिर नहीं होता है। इसमें समय–समय परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे–जैसे किसी देश में शक्ति, नवीन तकनीकी व यन्त्रों का विकास होता जाता है, वैसे–वैसे देश के कृषि आधारित उद्योगों की संरचना भी बदलती जाती है। जिसे औद्योगिक संरचनात्मक परिवर्तन कहते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत, बिहार एवं पूर्णियाँ जिला की कृषि आधारित उद्योगों की संरचना की तस्वीर इतनी अच्छी नहीं थी। क्योंकि अंग्रेजों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जो अर्थव्यवस्था सौंपी थी वह अर्थव्यवस्था मंद, गतिहीन, सामन्ती, अर्धविकसित एवं रूग्न थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व :– भारतीय (बिहार) कृषि आधारित उद्योगों का पुराना इतिहास अत्यन्त गौरवमय रहा है। मुगल काल में आये प्रसिद्ध पर्यटक टवर्नियर–ने भारत के औद्योगिक उत्कर्ष के बारे में लिखा है कि भारत में बनी हुई वस्तुएँ इतनी हल्की एवं सुन्दर होती है कि हाथ में होते हुए भी यह अभास नहीं होता है कि वे हाथ में है। शाही औद्योगिक आयोग ने सुती वस्त्रों के संबंध में भी आपनी रिपोर्ट में लिखा है कि जिस समय आदमी आधुनिक उद्योग–धंधों की जन्म भूमि पश्चिम यूरोप में असभ्य जातियों का विकास था, उस समय भी भारत अपने शासकों की सम्पति और शिल्पयों की उत्कृष्ट कला के लिए प्रसिद्ध था।1857 से पूर्व यहाँ का वस्त्र उद्योग काफी विख्यात था।

ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति की जड़ें ही नहीं जमीं, बल्कि यह चरम सीमा पर थी। अतः उस समय के विदेशी शासकों ने सदा यही प्रयास किया कि भारत में पक्का माल भेजा जाय व भारत से कच्चा माल लिया जाय। इस नीति का प्रभाव यहाँ के प्राचीन उद्योगों खासकर कृषि आधारित उद्योगों पर पड़ा और वे पतन की ओर अग्रसर होकर बिलीन होने लगे। कृषि का दबाव बढ़ने लगा। इस काल में कृषि संक्रमण काल से गुजर रही थी। बी॰ एम॰ मतिया ने अपनी पुस्तक *Famines in India* में लिखा है कि यहाँ 1860 से 1908 के बीच 49 वर्षों में बीस वर्ष देश के किसी न किसी भाग में अकाल या दुर्घटना प्रगट होती रही।

लेकिन दूसरी ओर इस काल में 1850 में रेलों की स्थापना हुई। 1850–55 के काल में पहली सूती वस्त्र व पहला पटसन कारखाना स्थापित हुआ। 1881 में टीटागढ़ (पं॰ बंगाल) कागज का कारखाना स्थापित हुआ।)

1900 ई॰ में बिहार में पहला आधुनिक चीनी का कारखाना स्थापित किया गया। बगान उद्योग भी इस काम में स्थापित हो चुका था।

(I) **नील उद्योग** :– इस उद्योग का बिहार व बंगाल में काफी विकास हुआ। यह उद्योग नील की खेती आधरित था।

(II) **चाय उद्योग** :– 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिमालय में ढ़ालों तथा आस–पास में चाय की खेती सफलतापूर्वक किया जा सकता है। अतः इस कृषि आधारित उद्योग का विकास किया गया जिसमें ब्रिटिश नागरिकों का काफी योगदान रहा है। 1866 में ब्रिटेन के चाय आयातों में भारतीय चाय का प्रतिशत केवल 4% था। 1903 में यह बढ़कर 60% हो गया। प्रथम विश्व युद्ध तक इस उद्योग ने काफी प्रगति की।

(III) **कहवा तथा कॉफी उद्योग** :– यद्यपि इस उद्योग की स्थापना 17वीं शताब्दी में हुई थी, लेकिन इसका विकास 1860 के बाद तीव्रता के साथ हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने तक भारत में दो लाख एकड़ भूमि में कहवें या कॉफी की खेती होती थी। भारत में 1911 को जनसंख्याँ के अनुसार 7 लाख लोग चाय व कॉफी उद्योग में, 03 लाख लोग सूती वस्त्र उद्योग में, दो लाख लोग जूट उद्योग में संलग्न थे।

प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ के समय सूती वस्त्र मिलों की संख्याँ देश में 264 जूट मिलों की संख्याँ 64 चीनी मिलों की संख्याँ 06 तथा कागज के 05 कारखाने स्थापित हो चुका था।

भारत सरकार ने कृषि आधारित उद्योगों के लिए संरक्षण की नीति अपनाई, जिससे औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिला । भारत सरकार ने सबसे पहले 1925 में कागज उद्योग को 1927 में वस्त्र उद्योग 1932 में चीनी उद्योग को व 1934 में कृत्रिम रेशम उद्योग को संरक्षण प्रदान किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन उद्योगों का उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। 1922–23 व 1938–39 के बीच सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन 2, गुणा, जूट उद्योग में 1, गुणा, कागज उद्योग में ढ़ाई गुणा बढ़ा है।

ब्रिटिश शासन के पूर्व बिहार में भी कृषि आधारित उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ का रेशम एवं सिल्क उद्योग भारत में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में प्रसिद्ध था। लेकिन ब्रिटिश शासन में उनके दोषपूर्ण नीति के काण कृषि आधारित उद्योगों का पतन होने लगा। लेकिन बाद में 1850 ई॰ में रेलवे की स्थापना के साथ उद्योगों का विकास शुरू होने लगा। 1900 ई॰ में बिहार में प्रथम चीनी कारखाना स्थापित किया गया। इसी काल में बगान उद्योग का भी विकास हो चुका था। नील उद्योग, चाय उद्योग, कहवा अथवा कॉफी उद्योग का विकास किया गया। लाह उद्योग, कंबल, कालीन एवं दरी उद्योग, का विकास उस समय हो चुका था। परन्तु बिहार एक कृषि प्रधान राज्य होने के कारण जितना कृषि आधारित उद्योगों का विकास होना चाहिए था, ब्रिटिश शासन में नहीं हुआ क्योंकि ब्रिटिश सरकार इन उद्योगों को नष्ट करना चाहता था। यहाँ से कच्चा माल ले जाता था तथा निर्माण कर भारत के बाजार में बेचता था, जिससे किसानों को कच्चा माल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता था।

बिहार का पूर्णियाँ जिला भी ब्रिटिश शासन के कृषि संबंधी दोषपूर्ण नीति से अछूता नहीं रहा। यही कारण है कि पूर्णियाँ कृषि प्रधान जिला होते हुए भी कृषि आधारित उद्योगों का प्रर्याप्त विकास नहीं हो सका था। पूर्णियाँ जिला का मलबरी सिल्क विश्व में प्रसिद्ध है, फिर भी इसका पूर्ण विकास नहीं हुआ। यहाँ की कृषि व्यवस्था पहले से ही अत्यन्त पिछड़ी अवस्था में थी। यहाँ सड़क, बिजली, पानी, ग्रामीण इलाकों में रेलवे का विकास न होने के कारण हुई थी। कच्चा माल रखने की व्यवस्था नहीं था। किसानों को वित व्यवस्था का भी कोई प्रबन्ध सरकार द्वारा नहीं किया जाता है। किसान गैर परंपरागत स्त्रोतों से श्रृण लेते थे। यहाँ के किसान श्रृणों के जाल में फँस चुके थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा

उत्पादकता बढ़ाने पर ध्यान नहीं दिया गया। लगान वसूलना प्रधान लक्ष्य था। पूर्णियाँ जिला के किसान जमींदारी व्यवस्था के अधीन थे। इस प्रकार की स्थिति बहुत दयनीय थी।

The following table indicates the cultivation of important crops in Purnea in 1870-71.

तालिका–1[2]

Name of the crop	***Area in acres***	***Percentage to total cultivated area***
Price	*1736932*	*75*
Wheat	*46318*	*2.6*
Other food grains	*46318*	*2.6*
Oil seeds	*25450*	*11*
Indgo	*25159*	*1.08*
Fibres	*69477*	*3*
Tobaco	*69477*	*3*

1870–71 में 2,15,910 क्षेत्रफल पर कृषि कार्य होता था। जिसमें कुल कृषि योग्य भूमि 75% धान की खेती होती थीं।

प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के बाद प्रथम चावल मिल 1920–21 कटिहार में खोला गया था। उसके बाद तीन चाय बगान किशनगंज में खोला गया था। 1924–25 के दौरान कई जूट मिल प्रारंभ किया गया था। छोटा सा चीनी मिल किशनगंज के इस्लामपुर में एवं बनमनखी पूर्णियाँ में खोला गया था। 1810 ई॰ में *Indigo* का 60 कारखाना स्थापित हो चुका था। इसमें 1700 लोगों को काम मिला हुआ था। 1870–71 में 25,159 एकड़ में *Indigo* का खेती होता था। बाद में चलकर इसमें ह्रास होने लगा। 1862 में मात्रा 30 *Indigo* कारखाना ही बच पाया। इस प्रकार 1904 के बाद इसमें काफी ह्रास होने लगा । इसके साथ ही साथ रेशम उद्योग, काफी पुराना उद्योग था।

पूर्णियाँ जिले में 3.12 लाख हेक्टयर भूमि है जिसमें 2.3 लाख हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है। इस प्रकार जिले में 74 प्रतिशत भूमि का क्षेत्र कृषि योग्य है। इसे एक तालिका के द्वारा स्पष्ट किया गया है :–

तालिका–2[3]

(भूमि का माप वर्ग हेक्टेयर में है)

क्र0सं0	प्रखण्ड का नाम	कुल भूमि	कृषि योग्य भूमि	सिंचित भूमि	गैर कृषि योग्य भूमि	कृषि योग्य गैर सिंचित भूमि
1.	पूर्णियाँ पूर्व	21278.10	12747.00	4249.00	8531.1	8496
2.	कसबा	15305.64	7373.00	4437.00	7932.64	2935.97
3.	के0 नगर	29241.00	20537.96	7191.00	8703.04	13346.86

4.	श्री नगर	13450.17	11483.43	4087.68	1966.74	7395.75
5.	जलालगढ़	11237.16	777112	3220.60	3466.04	4550.52
6.	बनमनखी	34868.75	27361.00	15523.00	7507.75	11838
7.	अमौर	24505.33	20419.19	8760	4086.14	11659.19
8.	बैसा	20732.15	17036.66	4520	3695.49	12516.66
9.	बायसी	24420.10	11609.04	5224.05	12811.06	6384.99
10.	डगरूआ	17035.07	15003.00	80	2032.07	14923.00
11.	धमदाहा	36253.66	31832.48	18017.93	4421.18	13814.55
12.	रूपौली	24835.74	17121.00	523100	7747.14	11890
13.	भवानीपुर	16064.35	11555.74	3220.00	4508.61	8335.74
14.	बरहरा कोठी	22971.28	17186.7	8100.00	3784.58	11086.7
		312198.5	231037.32	91861.39	81161.16	139175.93

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि पूर्णियाँ जिले के कुल भूमि का 74 प्रतिशत भूमि खेती योग्य है, जबकि खेती योग्य भूमि का सिर्फ 40 प्रतिशत भूमि ही संचित है। इस जिले में दो नदियाँ कोशी और महानन्दा बहती है। यह दोनों नदियाँ सालों भर बहती है। इन दोनों नदियों से नहर निकाल कुछ हद तक भूमि को संचित करने का प्रयास किया गया है।

पूर्णियाँ जिले में भी 90% लोग कृषक हैं, जिसमें से 70% लोगों के पास कृषि जोत के लिए लगभग 2 हेक्टेयर या उससे कम भूमि है। और वे लोग कुल जमीन का करीब 35% भाग पर खेती करते हैं। 25% कृषकों के पास 4 हेक्टेयर से अधिक भूमि है। प्रखण्ड में कृषकों, लघु कृषक, सीमान्त कृषक की संख्या को देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है यहाँ भी भूमि का उपविभाजन तथा अपखण्डण कम नहीं है।

तालिका–3[4]

क्र0सं0	प्रखण्ड का नाम	लघु कृषक	सीमान्त कृषक	कृषि श्रमिक
1.	पूर्णियाँ पूर्व	2297	4994	13786
2.	कसबा	4251	6245	20218
3.	श्रीनगर	1250	10993	1482
4.	के0 नगर	2374	21561	29542
5.	जलालगढ़	3301	5134	10216
6.	बनमनखी	6640	3790	9099

7.	अमौर	6460	12920	249119
8.	बैसा	3140	5551	28208
9.	बायसी	3716	4180	9290
10.	डगरूआ	2990	4295	9986
11.	धमदाहा	32345	69948	35367
12.	रूपौली	12421	8954	29059
13.	भवानीपुर	1202	5693	20638
14.	बरहरा कोठी	12665	5823	27004

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि किसानों का कृषि जोत का आकार एक हेक्टेयर से कम की संख्या सबसे अधिक है, जो सीमान्त कृषक है। यह संख्या सबसे अधिक के॰ नगर, प्रखण्ड में है। भूमिहीन कृषक जिसके पास सिर्फ बास की भूमि है और कृषि मजदूरी कर अपना जीवन यापन करते है, वह कुल जनसंख्या का 46% भाग है। छोटे कृषक जिसकी भूमि 2 एकड़ से अधिक है उसकी प्रतिशत 30% है। और शेष 4 हेक्टेयर से अधिक के जोत है।

फसल ढ़ाँचा

फसल ढ़ाँचे का तात्पर्य फसली क्षेत्र के उस अनुपात से है,जिसमें विभिन्न फसलें किसी एक समय पर उगायी जाती है। फसल ढ़ाँचे के अन्तर का अभिप्राय विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र के बढ़ने या घटने से है। प्रो॰ टी॰ डब्लू शुल्ज के शब्दों में फसल ढ़ाँचा से आशय एक निश्चित समय बिन्दु पर फसल क्षेत्र का अनुपात है। फसल ढ़ाँचे में परिवर्तन का अर्थ विभिन्न फसलों के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र के अनुपात में परिवर्तन है।

समय के अनुसार भारत में प्रमुख रूप से तीन फसलें होती हैं– खरीफ, रबी और गर्मी का फसल। खरीफ फसल के अन्तर्गत धान, ज्वार, बाजरा कपास आदि प्रमुख है, जो जेष्ठ, आषढ़ यानि मई–जुलाई में बोई जाती है और कार्तिक–अगहन यानि लगभग नवम्बर माह में काटी जाती है। रबी फसल कार्त्तिक–अगहन यानि अक्टूबर से दिसम्बर तक बोई जाती है और फाल्गुन–चैत यानि मार्च अप्रैल में काटा जाता है। इस प्रकार की फसलों मे गेहूँ, जौ, चना, तेलहन, दलहन आदि प्रमुख है। गर्मी की फसल फरवरी–मार्च में बोई जाती है और मई के अन्त में काटी जाती है इसमें मकई, मूंगफली प्रमुख है। उपयोग के दृष्टिकोण से भारतीय फसलों को खाद्य फसलें और नगदी फसलों में भी बाँटा जा सकता है। खाद्यान्न फसलों में खाद्य पदार्थों की फसलें आती हैं, जैसे गेहूँ, धान, बाजरा, मक्का, चना एवं दालें। नगदी फसलों में गन्ना, तेलहन, गरम मसाला, रबर, फल, सब्जी, चाय, कहवा, तम्बाकू, कपास, जूट इत्यादि है। इसका व्यावसायिक उपयोग होता है तथा यह कुछ उद्योग के लिये कच्चा माल में भी उपयोग होता है। जैसे–गन्ना, चीनी उद्योग का कच्चा माल है जूट, जूट उद्योग का कच्चा माल होता है।

एक समय ऐसा था जब ऐसा समझा जाता था कि भारत में फसलों के क्रम को नहीं बदला जा सकता है। इसका प्रमुख कारण यह समझा जाता था कि भारत जैसे देश में जहाँ कृषक प्रचलित परम्परा और अपने अल्पज्ञान के कारण नये प्रयोग करने से डरते हैं और उनके लिये कृषि जीवन यापन का साधन न होकर जीने की राह मात्र थी, ऐसी स्थिति में फसलों को बदलने की संभावना कम हो जाती है। किन्तु अब फसलों को क्रमबार बदलने की प्रक्रिया ने गति पकड़ ली है। और अधिकांश क्षेत्रों में यह लोकप्रिय होती जा रही है। इससे उत्पादन में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है और भूमि का विदोहन अधिक मात्रा में होने लगा है।

किसी क्षेत्र विशेष की मिट्टी, मौसम, वर्षा, जलवायु, सिंचाई सुविधाएँ एवं साधनों की सुलभता इत्यादि कुछ भौतिक एवं तकनीकी कारण हैं, जो उस क्षेत्र के फसल ढ़ाँचें को प्रभावित करते हैं। तकनीकि विकास द्वारा अधिकांश क्षेत्र के फसल ढ़ाँचे को प्रभावित करते हैं। तकनीकी विकास द्वारा अधिकांश क्षेत्र में अपेक्षित सुविधाएँ सुलभ करवा कर फसलों के चयन को प्रभावित किया जा सकता है।

अनेक सांख्यिकीय अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करतें हैं कि मूल्य परिवर्त्तनों तथा फसल ढ़ाँचे में एक घनिष्ट संबंध होता है। प्रो॰ मजुमदार ने स्पष्टतः दिखलाया है कि मूल्य समता अनुपात में परिवर्त्तन तथा अखिल भारतीय गन्ना क्षेत्र में परिवर्त्तन तथा पटसन चावल के अधीन क्षेत्र एवं इन तथ्यों के सापेक्ष मूल्यों में परिवर्त्तन के बीच एक घनिष्ट संबंध है। भारतीय सरकार के खाद्य तथा कृषि मंत्रालय द्वारा अन्तर फसल मूल्य समताओं का किया गया अध्ययन में स्पष्टतः बतलाया गया है कि फसलों के अधीन क्षेत्र पर मूल्य दो प्रकार से प्रभाव छोड़ते हैं। एक तो यह कि अन्तर फसल मूल्य समताओं में परिवर्त्तन विभिन्न फसलों के अधीन क्षेत्र में परिवर्त्तन लाता है। दूसरा यह कि किसी फसल के लिये एक स्थिर मूल्य स्तर बनाये रखा जाना है।

उत्पादक को अपने उत्पादन में वृद्धि करने के लिये अति ऊँचा मूल्य स्तर जितना दे सकता है, उसकी तुलना में बेहतर उत्प्रेरणा देता है। यदि उस मूल्य स्तर को अगले अनेक वर्षों तक स्थिर बनाये रखने में कोई अनिश्चितता न हो। लघु कृषक खाद्य फसलों में अधिक और नकदी फसलों में कम भूमि का उपयोग करते हैं। जिन फसलों में जोखिम कम होगा उनके उत्पादन में कृषकों की अधिक रूचि होती है। जिन फसलों के लिये साधन सरलता से उपलब्ध होगें, उनका उत्पादन स्वभावतः अधिक होगा। बटाईदारी में खेत के मालिक द्वारा ही फसल का निर्धारण होता है।

किसी फसल के मूल्यों में एकरूपता उसकी अधिक लोगप्रियता को बहुत अधिक प्रभावित करता है। आय में वृद्धि से कई कृषकों द्वारा विभिन्न एवं किसी एक फसल के चयन में निहित जोखिम के न्यूनीकरण की ओर भी समुचित ध्यान दिया जाता है। बीज, पानी उर्वरक, भण्डारण एवं विपणन की सुविधाएँ दिये जाने पर फसल ढ़ाँचे पर अपेक्षित प्रभाव डाला जा सकता है। उसी प्रकार भूमि व्यवस्था भी फसलों के ढ़ाँचे को प्रभावित करती है। यदि इसमें अनिश्चितता होगी तो फसल भी उसके अनुरूप अनिश्चित होगी।

सरकार द्वारा उठाये गये प्रशासनिक एवं वैज्ञानिक कदम बहुत हद तक फसलों के ढ़ाँचे को बदल सकती है। दूसरी ओर सरकार द्वारा किसी फसल विशेष के लिये दी जाने वाली अनुदान राशि या अन्य साधनों के लिये सहायता दिये जाने की स्थिति में उसकी लोकप्रियता बढ़ायी जा सकती है।

संदर्भ

1. भारत का आर्थिक विकास वी॰ एल॰ गुप्ता, पृ॰–125
2- *Sources :- Changing Agrarian economy of Purnea Dist – 1765 -1950 Madaneshwar Mishra, P. No. 17*
3. वार्षिक कार्य योजना जिला ग्रामीण विकास अभिकरण पूर्णियाँ (95–96)
4. वार्षिक कार्य योजना 98–99 जिला विकास अभिकरण पूर्णियाँ।